जीव दया के अभाव वाला धर्म निष्प्राण शरीर की तरह व्यर्थ है ।
- उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि

प्रातःकाल

चैत्र कृष्णा 11, गुरुवार, 11 मार्च, 2010

आरक्षण और परिवर्तन

महिलाओं की राजनीति में भागीदारी उनकी स्थिति पर असर डालती है

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) द्वारा अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस पर जारी रिपोर्ट भी इस बात का समर्थन करती है कि देश के सकल विकास के लिए आवश्यक है कि महिलाओं को राजनीतिक आरक्षण दिया जाना चाहिए। दुनिया के 40 प्रतिशत देश इस दिशा में आगे बढ़ चुके हैं। बाकी 60 प्रतिशत में भारत एक ऐसा बड़ा देश है, जिसने इस दिशा में कुछ नहीं किया है। इस मामले में भारत की स्थिति पड़ोसी देश नेपाल से भी बुरी है, जहाँ संसद में 33 प्रतिशत महिलाएँ हैं, जबकि भारत में लोकसभा में 9 प्रतिशत तथा राज्यसभा में इनका प्रतिशत 9.5 फीसद है। राजनीति में महिलाओं की भागीदारी की दृष्टि से दुनिया के इस सबसे बड़े लोकतंत्र का नंबर काफी पीछे यानी 99वाँ है। यूएनडीपी की रिपोर्ट यह सिद्ध करती है कि महिलाओं की राजनीति में भागीदारी उनकी कुल स्थिति पर असर डालती है।

पहले इसी बात को लें कि भारत में जन्म के समय लिंग अनुपात बेहतर होता है, मगर स्वास्थ्य, पोषण तथा सामाजिक उपेक्षा के कारण जन्म लेने वाली बच्चियाँ बड़ी संख्या में मर जाती हैं और आज भारत की आबादी में पुरूषों के मुकाबले महिलाओं का अनुपात 51.8 के मुकाबले मात्र 48.2 फीसद हो जाना इसका प्रमाण है। 2006 के आँकड़े बताते हैं कि लड़के-लड़की की मृत्यु दर में भी व्यापक असमानता है। जहाँ लड़कों के मामले में यह 1000 में 72 है, वहाँ लड़कियों में यह 81 है। एशिया-प्रशांत क्षेत्र में सबसे ज्यादा स्त्रियाँ मौत का शिकार बनती हैं, जिसका कारण स्वास्थ्य तथा पोषण के मामले में उनकी उपेक्षा होना तो है ही, प्रसव पूर्व गर्भ गिराया जाना भी है। यह स्थिति तब है, जब सरकारी स्तर पर महिलाओं और बच्चों के कल्याणार्थ कई योजनाएँ चल रही हैं और जागरूकता अपेक्षया बढ़ी है।

स्थिति वैसे केवल भारत की बुरी है ऐसा नहीं है, मगर भारत वह देश है, जहाँ लोकतंत्र सबसे ताकतवर है। इसलिए उसकी स्थिति अधिक शोचनीय मानी जाएगी। इसलिए भी मानी जाएगी कि संसद तथा विधानसभाओं में पुरूष-वर्चस्व लड़ाई पिछले 13 साल से चल रही है और हमारे राजनीतिकों के एक बड़े हिस्से को देश के भविष्य से ज्यादा प्यारा पुरूष-वर्ग का भविष्य दिख रहा है। बहरहाल महिला आरक्षण विधेयक राज्यसभा में बहस के लिए आ चुका है, यह भी कम शुभ नहीं है। ●●●

दिल को बहलाने के लिए

हालत सब शहरों की लगभग एक-सी है, लेकिन फिर भी दिल्ली उनमें सबसे बेहतर है

दिल को बहलाने के लिए गालिब ये खयाल अच्छा है कि जिस दिल्ली में कभी खुद गालिब बसते थे, वह देश के सब शहरों में सबसे अच्छा शहर माना जा रहा है। यह अखबार दिल्ली से भी निकलता है, इसलिए हमें तो यह अच्छा ही लगेगा कि देखिए, देश के सबसे बढ़िया शहर से हमारा अखबार निकल रहा है। वैसे यह राय हमारी नहीं है, भारतीय उद्योग परिसंघ द्वारा करवाए गए एक सर्वे के जरिए सामने आई है। इसके हिसाब से कई-कई मामलों में चेन्नाई, बेंगलुरू, कोलकाता और इंदौर से ही नहीं, राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र में आने वाले नजदीकी शहरों गुड़गाँव, नोएडा और फरीदाबाद से भी दिल्ली बेहतर है। दिल्ली को जनसंख्या के घनत्व, सुरक्षा, परिवहन, शिक्षा, शैक्षिक अवसरों तथा दुर्घटना की दृष्टि से बेहतर पाया गया है। हाँ, स्वास्थ्य के मामले में यह जरूर पिछड़ा शहर है। 17वें नंबर पर है। इससे बेहतर केरल के तीन शहर कोजिकोड़, तिरूअनंतपुरम तथा कोचीन हैं। यहाँ तक कि कोलकाता भी दिल्ली से बेहतर है।

जिस साल इस शहर में राष्ट्रमंडल खेल होने वाले हैं, उस साल यह सुनना दिल्लीवासियों को तो अच्छा लगेगा ही, उन्हें भी शायद अच्छा लगेगा, जो इस मौके पर दिल्ली आने वाले हैं। अब दिल्ली कई मामलों में बेहतर तो है ही। इस शहर में जितने पार्क हैं, उतने अन्यत्र कहाँ? जितनी सड़कें यहाँ चौड़ी हैं, उतनी कम शहरों में हैं, लेकिन आबादी के घनत्व की दृष्टि से देखें तो कुछ मायनों में यह बेहतर भी है, कुछ मायनों में बुरा भी है। मध्यवर्गीय बस्तियों में अपेक्षया खुलापन है, मगर गरीब बस्तियों में तो वही हालात हैं, जो कि गरीब बस्तियों में ही कहीं भी होते हैं। सुरक्षा का आलम यह है कि हर साल हर तरह के अपराध यहाँ बढ़ रहे हैं। कौन सुरक्षित है, कौन नहीं, यह कहना मुश्किल है।

जब तक सुरक्षित हैं, खैर मनाइए। परिवहन के मामले में मेट्रो के आंशिक रूप से आने पर स्थितियाँ सुधरी हैं और उम्मीद है कि भविष्य में और भी सुधरेंगी, लेकिन इससे पहले हाल बेहद बुरा था। गरीबों का तो अब भी सहारा ये बसें ही हैं। साइकल से चलने वाले, पैदल चलने वाले अभी भी असुरक्षित हैं। योजना जरूर है उन्हें भी सुरक्षित बनाने की। पैसा है आपके पास तो यहाँ शिक्षा भी बेहतर है और नौकरियों की दृष्टि से भी यह शहर शायद ज्यादा बुरा नहीं है। लेकिन जो है, उसी में से तुलनाएँ भी हो सकती हैं। हालत सब शहरों की लगभग एक जैसी है, किंतु फिर भी कहीं-कहीं कुछ बेहतर है और दिल्ली उनमें सबसे बेहतर है। यह सब तो होना भी चाहिए, आखिर यह राष्ट्रीय राजधानी भी तो है। ●●●

एक और विवादित बिल

अमेरिका के साथ हुआ चर्चित परमाणु सहयोग समझौता 2008 में लागू हुआ। इस प्रस्ताव के पुनरीक्षण के बाद अमेरिकी कांग्रेस ने भारतीय संसद में मंजूरी के लिए बुश प्रशासन को अनुमति दी थी, मगर इस रवायत के उलट मनमोहन सिंह सरकार संसद के दोनों सदनों को दरकिनार करके एक ऐसा कानून पारित कराना चाहती है, जिससे भविष्य में भोपाल गैस जैसी दुर्घटना होने पर इसकी जिम्मेदारी विदेशी कंपनियों के बजाय सरकार अपने ऊपर ले ले।

सिविल लाइबेलिटी फॉर न्युक्लियर डैमेज बिल में ऐसी मांग अमेरिका की उन प्राइवेट कंपनियों द्वारा की जा रही है जो फ्रांस और रूसी कंपनियों के मुकाबले सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियां नहीं हैं। ये अमेरिकी कंपनियां यह भी चाहती हैं कि किसी तरह की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष क्षति होने की सूरत में की जाने वाली भरपाई में भारत सरकार सब्सिडी दे। गंभीर दुर्घटनाओं के बाद के वित्तीय परिणामों के लिए इन विदेशी कंपनियों ने इस बिल में भारत सरकार को ढाल बनाने की कोशिश की है। जिसके बाद प्राथमिक तौर पर किसी भी अनहोनी की जिम्मेदारी इन विदेशी कंपनियों की जगह सरकार की होगी। प्रावधान के मुताबिक ये कंपनियां रेडियोधर्मी तत्वों से होने वाले गंभीर नतीजे की सूरत में 2250 करोड़ और छोटी दुर्घटना होने पर महज 300 करोड़ रूपये बतौर मुआवजा देने को बाध्य होंगी।

गौरतलब है कि भारत में कारोबार करने के लिए इन विदेशी कंपनियों को भारतीय करदाताओं के पैसे से सब्सिडी दी जाएगी और इन पैसों से प्रत्येक विदेशी कंपनी कई करोड़ डालर कमाई करेगी, फिर भी भारत सरकार इस विशेष अनुबंध पर सहमत हो गई है। खास तौर पर अमेरिकी, फ्रांसीसी और रूसी कंपनियों के लिए जो एक या दो संयंत्र लगाने जा रही हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो प्रत्येक कंपनी भारत से अरबों डालर कमाने के लिए मुंह बाए खड़ी है, जो किसी तरह की अनहोनी की सूरत में महज कुछ रूपये जुर्माना चुकाकर बरी हो जाएंगी। आश्चर्यजनक बात यह है कि भोपाल दुर्घटना के कटु अनुभवों के बावजूद भारत सरकार करदाताओं की गाढ़ी कमाई के पैसे से सब्सिडी देकर इन विदेशी कंपनियों को प्रश्रय देना चाहती है। सवाल यह है कि देशहित को ताक पर रखकर आखिर क्यों सरकार इन कंपनियों की वित्तीय देनदारी अपने सिर लेना चाहती है? क्यों सरकार इन विदेशी कंपनियों को खुले बाजार की प्रतिस्पर्द्धा से बचाने के लिए आगे आ रही है? इतना ही नहीं इन विदेशी कंपनियों के निर्बाध कारोबार के लिए इनकी हर शर्त मानकर हमारी सरकार बेहद महंगे दरों पर बिजली खरीदेगी और अपनी ओर से सब्सिडी देगी। परमाणु संयंत्र की स्थापना के लिए सरकार ने खास

ब्रह्मां चेलानी

तौर पर अमेरिकी, फ्रांसीसी और रूसी कंपनियों के लिए स्थान चिन्हित करके जमीन आरक्षित कर दिया है। परमाणु करार के बाद अमेरिका को खुश करने के लिए भारत सरकार ने अंतरराष्ट्रीय बाजार की कड़ी प्रतिस्पर्द्धा और पारदर्शिता को दरकिनार करके अरबों डालर के हथियार खरीदने के लिए एक करार पर दस्तखत किया है। प्राइस-एंडरसन एक्ट के मुताबिक अमेरिका में किसी तरह की परमाणु दुर्घटना होने पर इन कंपनियों के सिर पर भारी जुर्माने की तलवार लटकती रहती है, मगर भारत में इन कंपनियों के संयंत्र में ऐसी दुर्घटना होने पर वित्तीय बोझ अपने सिर लेकर हमारी सरकार इन कंपनियों को दोहरा लाभ पहुंचाना चाहती है।

प्राइस-एंडरसन लाइबिलिटी सिस्टम के मुताबिक किसी भी तरह की परमाणु दुर्घटना होने पर परमाणु संयंत्र चलाने वाली कंपनी पर बीमा सहित अन्य देनदारी लगभग 1050 करोड़ रूपये की बनती है। ऐसी अनहोनी के बाद जब इन कंपनियों पर 1050 करोड़ की देनदारी बनती है तभी अमेरिकी सरकार उसमें सहयोग करती है और वह भी मुद्रास्फीति की तत्कालीन दर के मुताबिक।

प्रस्तावित भारतीय कानून के बारे में परेशानी पैदा करने वाला दूसरा पक्ष भी कम भयावह नहीं है। प्राइस-एंडरसन एक्ट के मुताबिक अमेरिका में यदि कोई दुर्घटना होती है तो कोई भी पक्ष दीवानी अदालत में केस दायर कर सकता है, मगर इन विदेशी कंपनियों को भारत सरकार द्वारा दी गई छूट के मुताबिक यहां कोई दुर्घटना होने पर कोर्ट-कचहरी के तमाम मामलों से हमारी सरकार निबटेगी। दुर्घटना के दोषी साबित होने की सूरत में इन विदेशी कंपनियों पर जो कानूनी मामले चलेंगे वे भी सरकार अपने ऊपर ले लेगी। अंतरराष्ट्रीय मानकों के मुताबिक इन कंपनियों के साथ भारत का करार असंगत है। मिसाल के तौर पर जापान के साथ तय करार के मुताबिक दुर्घटना होने पर उनकी देनदारी 1.33 अरब डालर की होगी। ओईसीडी के पेरिस समझौते के मुताबिक देनदारी 1.5 अरब यूरो यानी कंपनी संचालक के कुल पचास फीसदी शेयर के बराबर होगी। जबकि जर्मनी के कानून के मुताबिक ऐसी सूरत में कंपनी पर असीमित जिम्मेदारी आयद होगी। 1986 में रूस में हुए चेर्नोबिल हादसे के बाद अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इस तरह की दुर्घटना को लेकर काफी कड़े प्रावधान किए गए।

अमेरिका में मौजूद 436 परमाणु रिएक्टरों में से कोई भी किसी अंतरराष्ट्रीय संधि से नहीं बंधा है। चीन, जापान, अमेरिका किसी पर इस तरह की कोई जिम्मेदारी नहीं है। यहां तक कि रूस ने भी 2005 के विएना समझौते के समय परमाणु दुर्घटना की सूरत में अपने ऊपर किसी तरह की जिम्मेदारी लेने से मना कर दिया था।

ऐसे में भारत सरकार का यह फैसला बेहद अजीबोगरीब और शर्मनाक है कि वह परमाणु दुर्घटना की जिम्मेदारी अपने सिर पर लेगी और ये विदेशी कंपनियां मनचाहे तरीके से मोटा मुनाफा कमाने के लिए आजाद होंगी। ●●●

नक्सलवाद की जड़

केंद्रीय गृह सचिव ने पिछले दिनों यह कहकर सनसनी फैला दी कि नक्सली समानांतर सरकार चलाना चाहते हैं और सेना के कुछ रिटायर अफसरों की मदद से उनका लक्ष्य 2050 तक भारत सरकार का तख्ता पलट कर अपनी सत्ता स्थापित करना है। लेकिन इस गंभीर रहस्योद्धघाटन की जैसी प्रतिक्रिया अपेक्षित थी वह नहीं हुई। आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा होने के बावजूद नक्सलियों से निपटने के लिए साझी रणनीति पर अमल नहीं हो पा रहा है। आठ राज्यों के 34 जिले नक्सलियों की गिरफ्त में आ चुके हैं । 40,000 वर्ग किमी इलाके पर कब्जा कर 1400 करोड़ रूपये सालाना की वसूली करने वाले नक्सलियों की देश के खनिज संसाधनों पर बढ़ती पकड़ आर्थिक विकास की गाड़ी को पटरी से उतार सकती है। निरंतर गंभीर होती परिस्थितियों में नक्सलियों के अधिक ताकतवर होने का इंतजार नहीं किया जा सकता। लेकिन नक्सलियों से दो-दो हाथ करने के साथ-साथ उन कारणों को भी दूर करना होगा जिनके कारण नक्सली हिंसा तेजी से पाव फैला रही है। स्वतंत्रता के बाद पूंजी व तकनीक प्रधान विकास रणनीति अपनाने के कारण देश भर में विकेंद्रित परंपरागत लघु व कुटीर उद्योगों का तेजी से पतन हुआ। आदिवासी बहुल क्षेत्रों में बड़ी परियोजनाएं लगीं, लेकिन स्थानीय समुदायों को उनका लाभ नहीं मिला। यहां दामोदर वैली कार्पोरेशन का उल्लेख प्रासंगिक होगा।

1948 में दामोदर व उनकी सहायक नदियों पर शुरू हुई इस परियोजना को पूरा हुए आधी शताब्दी से ज्यादा समय बीत चुका है, लेकिन इससे विस्थापित हुए लोग आज भी मुआवजे के लिए अदालतों के चक्कर काट रहे हैं, जबकि इस परियोजना से पैदा हुई बिजली का लाभ लेकर हजारों लोग करोड़पति हो चुके हैं। खनिज संसाधनों से संपन्न किंतु आर्थिक रूप से पिछड़े नक्सली क्षेत्र दुनिया में सबसे ज्यादा सस्ता श्रम मुहैया कराते हैं। यहां एक ओर बेशकीमती

रमेश दुबे

खनिज निकालने के लिए अरबों डालर झोंके जा रहे हैं वहीं दूसरी ओर आदिवासियों को उनके घरों व जंगलों से उजाड़ा जा रहा है। इन क्षेत्रों में राज्य सरकारों और कॉरपोरेट घरानों का ऐसा गठजोड़ उभर चुका है जो सस्ते श्रम और सस्ते संसाधनों को किसी भी कीमत पर अपने कब्जे में करने की होड़ में लगा है। इससे स्थानीय समुदायों की जीविका खतरे में पड़ रही है। उदाहरण के लिए छत्तीसगढ़ से अच्छी किस्म का लौह अयस्क जापान को 400 डालर प्रति टन पर निर्यात किया जा रहा है। सरकार टाटा, जिंदल, एस्सार जैसी कंपनियों को लौह अयस्क के खदान पट्टे पर देने को बेताब हैं। इन सौदों में सरकार को सिर्फ 50 रूपये प्रति टन की रॉयल्टी मिलेगी। दूसरी ओर छोटे स्टील उत्पादकों, स्पंज आयरन मिलों को लगभग 6000 रूपये प्रति टन के हिसाब से लौह अयस्क खुले बाजार से खरीदना पड़ रहा है। इसीलिए असंतोष उभर रहा है। स्पष्ट है देश के संसाधनों के लाभ जब तक स्थानीय समुदायों को नहीं मिलेंगे तब तक नक्सलवाद को उर्वर भूमि की कमी नहीं रहेगी।

देश की ज्यादातर गरीब जनसंख्या पिछड़े क्षेत्रों में रहती है। अत: समेकित विकास के लिए इन क्षेत्रों पर फोकस बढ़ाना होगा। इन क्षेत्रों में ढाचागत सुविधाएं और संपर्क बढ़ाने पर विशेष ध्यान देना होगा। इससे न केवल बाजार से जुड़ी गतिविधिया बढ़ेगी, बल्कि संस्थागत बाधाओं को भी दूर किया जा सकेगा। सबसे बढ़कर राजनीतिक भ्रष्टाचार दूर करने के गंभीर उपाय करने होंगे। यहा झारखंड व कर्नाटक के उदाहरण प्रासंगिक होंगे। झारखंड देश के सबसे गरीब राज्यों में से एक है, लेकिन यहां के एक पूर्व मुख्यमंत्री पर 4,000 करोड़ रूपये के घोटाले का आरोप है। यह राशि राज्य के बजट का पांचवां हिस्सा है।

राजनीतिक भ्रष्टाचार और एकागी विकास रणनीति का परिणाम अमीरी-गरीबी की बढ़ती खाई के रूप में सामने आ रहा है । 2008 में 'जर्नल ऑफ कंटम्प्रेरी' एशिया में छपे एक लेख में जेम्सप पेट्रास ने बताया था कि दुनिया की सबसे बड़ी गैर बराबरी भारत में पाई जाती है, जहा पैंतीस खरबपति परिवारों की दौलत इस देश के अस्सी करोड़ भूमिहीन किसानों, मजदूरों और शहरी गंदी बस्तियों के लोगों की कुल दौलत से अधिक है। रिपोर्ट के अनुसार भारत के सबसे अमीर और सबसे गरीब आदमी के बीच अंतर नब्बे लाख गुना हो गया है। दो दशक पहले बीस कॉरपोरेट घरानों के पास देश की कुल जीडीपी का मात्र दो प्रतिशत हिस्सा होता था, जो कि आज बढ़कर बीस प्रतिशत तक पहुंच गया है। ●●●

घर की फूट

उत्तराखंड में कांग्रेस की गुटबाजी थमने का नाम ही नहीं ले रही। लोकसभा के पांचों सांसद, सूबेदार और विधानसभा में पार्टी के नेता सभी एक-दूसरे की टांग खींचने में जुटे हैं। दूसरे को नीचा दिखाने का मौका इनमें कोई भी नहीं छोड़ता। आपसी लड़ाई से फुर्सत मिले तब तो विपक्ष की भूमिका भी निभाए पार्टी। खुद सूबेदार यशपाल आर्य ने भी मान लिया है कि कुंभ की बदइंतजामी और दूसरे मुद्दों पर सत्तारूढ़ भाजपा को घेर नहीं पाई पार्टी अपनी ढिलाई के चलते। विधानसभा में पार्टी के नेता हरक सिंह रावत ने बिजनौर जिले के ६१ गांवों को उत्तराखंड में शामिल करने की मांग कर नया विवाद उभार दिया।

इससे असहमत यशपाल आर्य ने फौरन काट की और इसे रावत का निजी विचार कह कर खारिज कर दिया। कांग्रेस पार्टी का विचार मानने को वे तैयार ही नहीं हुए। फिर तो रावत के आंदोलन की हवा निकल गई। नारायणदत्त तिवारी के मामले में भी आर्य अपनी अलग राह चलते दिखे। वफादारी के फेर में बोल गए कि तिवारी उनके नेता हैं। यह बात अलग है कि सूबे के सहप्रभारी भोला पांडेय ने नकार दी आर्य की बात। पांडेय ने तो तिवारी को आराम करने की सलाह भी दे डाली। विजय बहुगुणा, हरीश रावत और सतपाल महाराज में भी रत्तीभर नहीं पटती। जब प्रमुख विपक्षी दल का यह हाल हो तो भला मुख्यमंत्री क्यों नहीं मन ही मन हर्षाए। रमेश पोखरियाल निशंक भी तो इसी वजह से चैन की बंसी बजा रहे हैं।

अनूठा नजारा

हरियाणा विधानसभा में चौटाला परिवार का खूब डंका बज रहा है आजकल। क्यों न बजे। आखिर तीन सदस्य तो इसी परिवार के ठहरे विधानसभा में। तभी तो इनेलो के दूसरे विधायक बेफिक्र हैं। ऊपर से मजाक अलग कर रहे हैं कि उन्हें हुड्डा सरकार पर वार करने की इस बार कतई जरूरत नहीं। ओमप्रकाश चौटाला और उनके दोनों लाड़ले अजय और अभय ही काफी हैं इस काम को अंजाम देने के लिए। यह बात अलग है कि चौटाला के वार की काट के लिए हुड्डा के पास भी संपतसिंह हैं जो तीन दशक तक देवीलाल परिवार की वफादारी करने के बाद बगावत कर आए हैं हुड्डा की शरण में। जो भी हो विधानसभा का नजारा होगा दिलचस्प।

बाल की खाल

हिमाचल में अभी तक छाया है भाजपा की इंदौर बैठक का असर। इंदौर से जोड़कर कई तरह की कहानियां भी सुनाई पड़ रही हैं। मसलन, शांता कुमार को तरजीह देने की बात चौंकाती है। नितिन गडकरी ने बैठक को जितनी बार भी बीच में छोड़ा, अपनी जगह अध्यक्षता का जिम्मा शांता कुमार को ही थमाया। वह भी उनसे ज्यादा दिग्गज पार्टी उपाध्यक्ष की मौजूदगी के बावजूद। शांता कुमार खेमा इसके भी निहितार्थ तलाश रहा है। कहा जा रहा है कि सत्ता में होने के बावजूद गडकरी की नजर में तो हाशिए पर जा रहे हैं मुख्यमंत्री प्रेम कुमार धूमल। रही धूमल खेमे की बात तो वह अभी ज्यादा चिंतित नहीं दिखता। धूमल की पसंद का सूबेदार बनाया जाना अभी तक इस खेमे को अपने भारी होने का सबूत दिख रहा है। सो इंदौर में नाराज शांताकुमार को कुछ तसल्ली देना रहा होगा धूमल खेमे की नजर में गडकरी का मकसद। वैसे भी शांता कुमार तो अच्छे व्यवहार से ही पसीज जाते हैं। खयाल बुरा नहीं है धूमल खेमे का। पर शांता कुमार को गडकरी के हाथों ज्यादा तवज्जो मिलने की बात को हवा में उड़ाना नादानी होगी। आखिर शांताकुमार की छवि ईमानदार नेता की रही है। ऐसे में गडकरी की मजबूरी है उन्हें साथ लेकर चलना।

अधीर हुए लालू

अपने अनूठे अंदाज के लिए भारतीय सियासत में बेजोड़ जगह बना चुके हैं लालू यादव। आजकल महंगाई को मुद्दा बना रखा है। इसी मुद्दे पर बिहार बंद भी किया और इस बहाने अपनी ताकत का आकलन भी कर लिया। आजकल केंद्र सरकार पर बरस रहे हैं। महंगाई का विरोध कर रहे दूसरे दलों से दिल्ली में वे ही क्यों पिछड़ें। भाजपा के साथ खड़ा होना पड़े तो हो जाएंगे। कांग्रेस को उसकी औकात तो दिखानी ही है। धर्मनिरपेक्षता के नाम पर जिस पार्टी को आंख मूंद कर सिर माथे बिठाया वह तिरस्कार कर रही है लालू का। यह कतई बर्दाश्त नहीं है लालू को। फिर केन्द्र में कांग्रेस को जितना कोसेंगे, बिहार में चुनाव के दौरान उतना ही फायदा मिलेगा उनको। अब कांग्रेस के सहयोगी तो हैं नहीं। बिहार में उन्हीं के जनाधार पर नजर गड़ाए है कांग्रेस। ऐसे में भाजपा और जद एकी से ज्यादा जरूरी तो उनके लिए कांग्रेस को उसकी औकात में रखना है।

विदाई का इंतजार

सितारे लगातार गर्दिश में ही चल रहे हैं रीता बहुगुणा जोशी के। उत्तर प्रदेश की कांग्रेस सूबेदार के फैसलों को पार्टी आलाकमान भाव ही नहीं दे रहा। एक के बाद एक लगातार रीता के तो जैसे सारे ही फैसले नकार रहा है दस 'जनपथ'। अल्पसंख्यक प्रकोष्ठ का मामला हो या पिछड़े प्रकोष्ठ का। दूसरे प्रकोष्ठ भी अलग नहीं है। उनकी नियुक्तियां रीता ने बड़े जोश से की थी। पर आलाकमान ने मंजूरी की मुहर तो लगाई ही नहीं उन्हें रद्द भी कर डाला। इससे साफ हो गया है कि नाराजगी बरकरार है आलाकमान की उनके प्रति। बचा काम पार्टी में उनका विरोधी खेमा पूरा कर रहा है। बड़बोलापन तो गजब का है ही रीता में। पहले यूपी की मुख्यमंत्री मायावती के खिलाफ शर्मनाक टिप्पणी कर जेल की हवा खाई। फिर राहुल गांधी पर ही कर डाली अनुचित टिप्पणी। उनके विमान के अंधेरे में उड़ने पर टिप्पणी की थी। राहुल गांधी को इस टिप्पणी के बहाने पत्रकारों का सामना करने में पसीना आ गया। यह कह कर पीछा छुड़ाया कि रीता जी कोई पायलट नहीं है। यानी गुस्से में रहे होंगे राहुल तभी भाई लोगों ने कह दिया था कि अब दिन लद गए रीता के। बसपा सरकार के खिलाफ कोई आक्रामक आंदोलन भी नहीं कर पाई है। अलबता पार्टी में पैसे के बल पर पद बांटने के आरोप जरूर लगे हैं उन पर। मुजफ्फरनगर के राजवीर वर्मा का दागी अतीत किससे छिपा है। पर उसे सीधे प्रदेश सचिव बना दिया रीता ने। बड़बोले राजगीर ने खुलेआम कहा कि दस लाख नकद और एक कार भेंट की थी रीता को। यह बात अलग है कि रीता के लखनऊ के घर में जब बसपाइयों ने आग लगाई तो दान की यह कार भी स्वाहा हो गई। बरेली में हुए दंगे पर भाजपाई तो रोटी सेंकने पहुंच गए पर रीता को बयान देने तक की फुर्सत नहीं मिल पाई। प्रतापगढ़ के हादसे की सुध भी रीता और उनकी टोली ने तभी लेना गवारा किया जब दिल्ली से राहुल गांधी के यहां पहुंचने की खबर मिल गई। सो, रीता बहुगुणा की जगह कभी भी आ सकता है नया सूबेदार। गैरतमंद होती तो अपनी नियुक्तियों के नकारे जाने के बाद खुद ही इस्तीफा दे देती। आलाकमान का काम भी आसान हो जाता और उनकी प्रतिष्ठा भी बच जाती। पर वे तो बेआबरू करके कूचे से निकाले जाने को खुद ही बुलावा दे रही हैं।

दाव-पेंच नीतीश के

विरोधियों पर भारी पड़ने की फितरत में माहिर है नीतीश कुमार। यूपीए, राजद और लोक जनशक्ति पार्टी सभी के खिलाफ आक्रामक तैवर दिखा रहे हैं बिहार के मुख्यमंत्री। केन्द्र सरकार की भी खूब खिंचाई कर रहे हैं। आमतौर पर न भी करते लेकिन अब तक मजबूरी ठहरी। विधानसभा चुनाव सिर पर है। राजपाट बरकरार रखने की तमन्ना सभी को होती है। लालू यादव और रामविलास पासवान की कुछ ज्यादा ही खबर ले रहे हैं नीतीश। दरअसल, ये दोनों कहने को तो केन्द्र की सत्ता पर काबिज यूपीए के समर्थक ठहरे पर आजकल उसके खिलाफ लड़ाई भी लड़ रहे हैं। दोनों की घेरेबंदी के पीछे नीतीश का अपना मकसद है। केन्द्र सरकार के विरोध की राजनीति के सिरमौर ये बिहार में खुद रहना चाहते हैं, लालू और पासवान को बाजी मारने नहीं देना चाहते। केन्द्र को कठघरे में खड़ा करने के लिए कभी अपने सूबे के लिए विशेष दर्जे की मांग उठा देते हैं तो कभी सूबे की उपेक्षा और तौहीन करने का आरोप जड़ देते हैं केन्द्र सरकार पर। वित्त आयोग की सिफारिशों ने नया बहाना दे दिया है। तैरहवें वित्त आयोग की सिफारिशों पर अमल की मांग उठाई है। इस आयोग ने केन्द्रीय करों में राज्यों का हिस्सा बढ़ाया है। बिहार के साथ नाइंसाफी नहीं होने देंगे नीतीश। यही एजेंडा है आजकल सभाओं में उनका। मुद्दे ऐसे हैं कि लालू और पासवान भी कोई नुक्ताचीनी नहीं कर सकते। उलटे हां में हां ही मिलाने को मजबूर कर दिया है उन्हें नीतीश ने। रही कांग्रेस की बात, बिहार में यह नीतीश का विरोध तो खूब करती है पर केन्द्र सरकार पर वार करने के सवाल पर बिहार में उसे कुछ नहीं सूझता सफाई में। ●●●